SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

गाँधी जी की संप्रेषण कला और पत्रकारिता

शाहिद अली, (Ph.D.), जनसंचार विभाग,
कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
शाहिद अली, (Ph.D.), जनसंचार विभाग,
कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

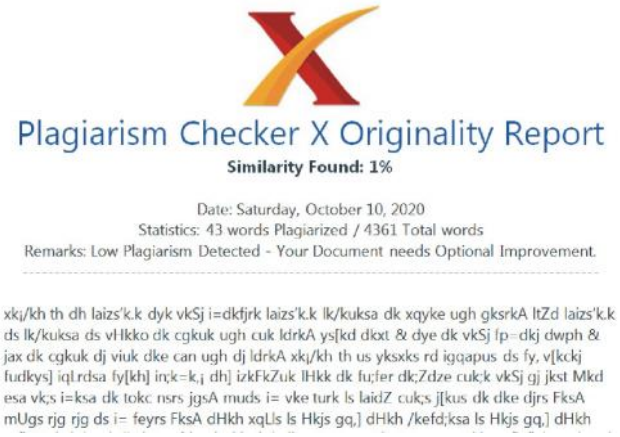

Received on : 10/10/2020
Revised on : -----
Accepted on : 17/10/2020
Plagiarism : 01% on 10/10/2020

शोध सार

संप्रेषण साधनों का गुलाम नही होता। सर्जक संप्रेषण के साधनों के अभाव का बहाना नही बना सकता। लेखक कागज – कलम का और चित्रकार कूची – रंग का बहाना कर अपना काम बंद नही कर सकता। गाँधी जी ने लोगो तक पहुंचने के लिए अखबार निकाले, पुस्तकें लिखी, पदयात्राएँ की, प्रार्थना सभा का नियमित कार्यक्रम बनाया और हर रोज डाक में आये पत्रों का जवाब देते रहे। उनके पत्र आम जनता से संपर्क बनाये रखने का काम करते थे। उन्हे तरह तरह के पत्र मिलते थे। कभी गुस्से से भरे हुए, कभी धमकियों से भरे हुए, कभी बेसिरपैर के सवाल के साथ। लेकिन गाँधी जी सबका उत्तर देते थे। जेल में भी यह सिलसिला चलता रहता था।

मुख्य शब्द

संप्रेषण, गाँधी जी, असहयोग आंदोलन, जन विद्रोह, अस्पृश्यता।

गाँधी जी का डाक कभी–कभी मनोविनोद का अवसर उपस्थित करती थी। उदाहरण के लिए एक पत्र में गाँधी जी से पूछा गया था तीन मन वजन का आदमी चलते हुए चीटियों की हिंसा करते हुए कैसे बच सकता है ? महादेव भाई ने जब यह पत्र पढ़ा तो वल्लभ भाई चट से बोले, ''उसे लिखो कि वह अपने पैर सिर पर रख के चले।'' इसी तरह एक पत्र में कहा गया था कि उसकी पत्नी बहुत बदसूरत है, वह उसके साथ कैसे सुखपूर्वक रह सकता है ? वल्लभ भाई ने कहा, ''उसे कहो वह अपनी आँख फोड ले। गाँधी जी भी इन पत्रो का लुत्फ लेते थे। कभी – कभी वह अपने व्यवहार से अपना मंतव्य सटीक ढंग से संप्रेषित कर देते थे। एक प्रसिद्ध प्रसंग है। किसी ने निंदा भरा लेख उन्हे दिया और उस पर उनकी प्रतिक्रिया जानने का अनुरोध किया। गाँधी जी ने पत्र पढ़ा। कागजों में लगा हुआ पिन

निकालकर अपने पास रख लिया। इसी प्रकार एक और घटना है। एक ब्रिटिश डेलीगेशन उनसे मिलने गया। वे अपनी बकरी की टूटी हुई टॉग पर मिट्टी की पट्टी बांध रहे थे वे अपना काम करते रहे और ब्रिटिश डेलीगेशन को बड़ी देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। बकरी की सेवा से फुरसत पा कर वे आये, तो बोले, माफ करना मै एक बहुत जरूरी काम में उलझ गया था।'' ब्रिटिश डेलीगेशन को यह समझते देर नही लगी कि गाँधी जी की डेलीगेशन के संबंध में क्या राय है।

अपनी इस वैविध्यपूर्ण संप्रेषण कला के कारण गांधी जी ने उस समय, जब रेडियो और अखबार भी बहुत कम लोगों तक पहुंचते थे, ऐसा प्रभाव पैदा किया जो सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति के वर्तमान समय में भी असंभव है। वे एक आवाज लगाते थे और सारा देश उनके साथ चल पड़ता था। जब आंदोलन रास्ते में भटकने लगता था, तो ऐसा कोई कदम उठाते थे कि सारा देश स्तब्ध रह जाता था। चौरी–चौरा घटना के बाद जब उन्होने असहयोग आंदोलन वापस लेने की घोषणा की तो सारे देश में स्तब्धता छा गयी। ब्रिटिश सरकार को जो व्यापक जन विद्रोह से बुरी तरह घबरा गयी थी। बंबई के गर्वनर लॉर्ड लॉयड ने कहा गांधी का यह प्रयोग विश्व के इतिहास का महानत्म प्रयोग था और यह सफलता से केवल एक इंच दूर रहा। सरकार कुछ हजार लोगो को जेल में डाल सकती थी, लेकिन जब पच्चीस करोड़ जेल जाने को तैयार हो, तो कोई सरकार क्या कर लेगी।

पूना समझौते के बाद गांधी जी ने निश्चय किया कि अस्पृश्यता के कलंक को धोना है और वे अस्पृश्यता निवारण के लिए पदयात्रा पर निकल पड़े। हर तरफ से उन्हे विरोध ही मिला। काले झंड़े दिखाना, गांधी जी की सभा में हुडदंग करना, पर्चे बांटना, इतने तक ही उनका विरोध सीमित नही था। उन्होने गांधी जी की जान लेने के भी प्रयत्न किये। कुछ का विचार था कि गांधी वर्णाश्रम धर्म को, जो अस्पृश्यता को अनुमति देता है, नष्ट कर रहे है। उधर कुछ लोगों को लगता था कि गांधी दलितों को हिन्दू धर्म के साथ बांधे रखने और वर्णाश्रम धर्म को बचाने का प्रयत्न कर रहे है। यह मत भी सामने आया की गांधी एक बेकार मुद्दें को उठा कर सविनय अवज्ञा आंदोलन की धार को कुंद कर रहे है। यह वस्तुतः गुरूदेव के शब्दों में ''एकला चलो'' यात्रा थी। अपनी यात्रा के दौरान उन्होने लंबे–चौडे भाषण नहीं दिये। वे सिर्फ अस्पृश्यता को छोडने के लिए कहते थे और हरिजन नामक सेवक संघ के लिए चंदा मांगते नवंबर 1934 से अगस्त 1934 के बीच चली उस यात्रा ने हजारों साल से बनी दिमागो की जकड़न को तोड़ दिया।

गांधी के जीवनी–लेखन हेनरी पोलक उन्य प्रशंसक होरेस एलेक्जेंडर से 35 साल बाद लिखा, अस्पृश्यता को समाप्त करने में मानवतावादी विचारों, लोकतंत्र के प्रभाव और ईसाई मिशनरियों के प्रभव को तो निःसंदेह स्वीकार किया जायेगा, किन्तु मेरे विचार से इसमें सितंबर 1932 के उस दिन को निर्णय माना जायेगा जब गांधी जी ने इसके लिए अनशन किया था। इस यात्रा का ही प्रभाव था कि हिन्दू महासभा और सनातन धर्म सभा के सबसे सम्माननीय नेता मदन मोहन मालवीय भी बदल गये और उन्होने व्यवस्था दी कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अनिवार्य तत्व नही है। सरदार पटेल ने गांधी जी की हृदय परिवर्तन की इस शक्ति को तानाशाही शक्ति कहा था। यरवदा जेल में 1932 में गांधी जी ने उपवास किया। जब उन्होने उपवास तोड़ा, तो उन्हे स्पंज करने के लिए सरदार पटेल को उनके सारे तौलिये इस्तेमाल करने पड़े। गांधी बोले ''मै तुमसे सारे तौलिये का हिसाब लूँगा।'' इस पर पटेल ने कस्तुरबा को सुना कर कहा ''देखो बा यह तानाशाही नही तो क्या है?'' इन्होने मालवीय जी को खद्दर पहनने के लिए मजबूर किया, अछुता का स्पर्श करने को मजबूर किया, फिर उन्हे जेल पहुँचाया और सात सागर पार जेल भी ले गये। इन्हे तो तब तक संतोष नही होगा जब तक वे मालवीय जी को अछूतो के साथ भोजन करने के और अपने रिश्तेदारों की शादियाँ अछूतो के साथ करने के लिए मजबूर नही कर देगें।

एक सम्मेलन में उपवास के दिनो में यह प्रस्ताव पास किया गया कि स्वराज की संसद का पहला कानून होगा सबको सामाजिक और धार्मिक समानता की गारंटी देना और दलितों को मंदिर प्रवेश का अधिकार देना। गाँधी जी के उस उपवास और एकला चलो यात्रा के संदेश ने हजारों साल की दीवार तोड़ कर अपना असर दिखाया।

गांधी जी की संप्रेषण शक्ति का उत्कृष्टतम रूप छोडो आंदोलन की घोषणा के अवसर पर मिलता है। जिन

लोगो ने 8 अगस्त 1942 को मुबंई के ग्वालिया मैदान में उनका भाषण सुना है वे बता सकते है कि उनकी आवाज मे क्या जादू था। भारी वर्षा में कीचड से लथपथ विशाल जनसमूह ने गांधी जी के भाषण को जो एक घंटा चला सांस बाधे सुना। ऐसा लगता था कि कोई मसीहा एक नये युग को संदेश दे रहा है। मधु लिमये के शब्दों मे (जो इस अवसर पर सभा में मौजूद थे) भारत के इतिहास का वह महान क्षण था। उन्होने लिखा ''मै गाँधी जी के विचारो का आलोचक रहा हूँ, लेकिन उस दिन देर राज तक उपके प्रेरणादायक भाषण ने मुझे और मेरे जैसे लाखो युवा लोगो को मोहित कर दिया।'' ब्रिटिश सरकार ने गांधी जी और कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यो को उसी रात गिरफतार कर लिया गया और अज्ञात जेलों में पहुंचा दिया, किन्तु गांधी जी का संदेश सारे भारत में फैल चुका था। अगले दिन ब्रिटिश सम्राज्य के खिलाफ सर्वत्र युद्ध हो गया।

विभाजन के बाद जब दंगो की आग चारों तरफ फैली और सारी व्यवस्था सारे संचार–साधन उन्हे शांत करने में व्यर्थ सिद्ध हो गये, तो गांधी जी ने मौत का खतरा उठा कर दंगा ग्रस्त क्षेत्रो की पद यात्रा की और बडे दंगो की आग का ठंडा किया। उनकी उपस्थिति ही शांति का सबसे बडा संदेश वाहक बनी। उन्हे एक व्यक्ति पीस मिशन कहा गया। गांधी जी की अद्‌भूत संप्रेषण शक्ति का स्त्रोत था। सत्य के प्रति उनकी अटूट निष्ठा। पूरी ईमानादारी से की गई मन की बात दूसरों को छूए बिना नही रहती। यही उनकी पत्रकारिता का शाश्वत सत्य भी था। गांधी जी समय समय पर पत्रकारिता और उसके मूल्यों पर अपनी सहज टिप्पणी करते रहे। पत्रकारिता गांधी जी की दृष्टि में एक पावन यज्ञ की भांति रही।

उन्होने अपनी ''आत्मकथा'' में जैसा कहा है – ''इंडियन ओपनियन'' के प्रथम मास में ही मै समझ गया था की पत्रकारिता का एकमात्र ध्येय सेवा होना चाहिए। समाचार पत्रों के पास बडी भारी शक्ति है, लेकिन जिस प्रकार अनियंत्रित बाढ़ का पानी पूरी बस्ती को डुबा देता है और फसलों का नष्ट कर देता है। उसी प्रकार अनियंत्रित लेखनी की सेवा भी विनाशकारी होती है। यदि उसका नियंत्रण बाहर से किया जाए, तो वह नियंत्रणहीनता से भी अधिक अनिष्टकारी सिद्ध होता है। प्रेस का नियंत्रण तभी लाभकारी हो सकता है जब प्रेस उसे स्वयं अपने ऊपर लागू करे। अगर तर्क यही है तो दुनिया में कितने पत्र इस कसौटी पर खरे उतरेंगे? लेकिन जो पत्र–पत्रिकाएँ निकम्मी है, उन्हे कौन रोके? अच्छाई और बुराई की तरह निक्कमी और उपयोगी भी साथ–साथ चलेंगी और मनुष्य को अपना चुनाव खुद करना होगा।

गांधी जी ने इस संबंध में यंग इंडिया के 27 सितंबर 1925 के अंक में लिखा, कि मैने इसमें प्रवेश स्वयं पत्रकारिता की खातिर नही किया है, बल्कि यह मेरे जीवन में ध्येय की पूर्ति में सहायक है ऐसा मानकर किया गया है। मेरा ध्येय अत्यंत संयम के साथ उदारण, ओर उपदेश देते हुए सत्याग्रह के प्रयोग की शिक्षा देना है –सत्याग्रह जो अहिंसा तथा सत्य का प्रत्यक्ष परिणाम है। इसलिए यदि मुझे अपने धर्म पर आरूढ़ रहना है, तो मुझे क्रोध में आकर या विद्वेष की भावना से नही लिखना है। मुझे निष्प्रयोजन नही लिखना है। मुझे केवल उत्तेजना फैलाने के लिए नही लिखना है ।

पाठक इस बात को समझ ही नही सकते कि मुझे हफ्ते दर हफ्ते शीर्षकों और शब्दों के चुनाव में कितना संयम बरतना पड़ता है यह मेरे लिए एक प्रशिक्षण है, इससे मुझे मेरे अंदर झांकने और अपनी कमजोरियों का पता लगाने का मौका मिलता है। कई बार मेरा दंभ मुझे चुभने वाली भाषा का प्रयोग करने या मेरा क्रोध मुझे कोई सख्त विशेषण लगाने का आदेश देता है। यह बड़ी विकट परीक्षा है पर दुर्भावानाओं को दुर करने का यह उत्तम उपाय है। आत्मकथा के पृष्ठांक 206 में गांधी जी ने उद्धव कि लिखते समय मेरी अंतरात्मा मुझसे जो लिखाती है, मै लिखता जाता हुँ। मै निश्चित रूप से यह जानने का दावा नही करता की मेरे सभी संचेतन विचार और कार्य अंतरात्मा द्वारा निर्देशित होते है। लेकिन अपने जीवन में जो बड़े से बड़े कदम मैने उठाये है, और छोटे से छोटे भी, उनकी परीक्षा करने पर मे समझता हूँ कि यह कहना अनुचित नही होगा कि वे सभी अंतरात्मा द्वारा निर्देशित थे।

गांधी जी का व्यक्तित्व बहुआयामी था, यह बात उल्लेखनीय प्रसंगो से सिद्ध होती है। साथ ही उनमें पत्रकारिता के लिए आवश्यक वे सभी गुण थे जिनसे पत्रकारिता के प्रतिमान तय हो रहे थे। उल्लेखनीय प्रसंगो की

चर्चा सिर्फ इसलिए नही है कि वे विभिन्न राजनैतिक घटनाओं में किस प्रकार से जुड़े रहे है, अपितु इसकी पृष्ठभूमि में पत्रकारिता के उन मूल्यों की खोज है जो एक जननेता के आसन्न पत्रकारिता में भी उस यथार्थ को केवल ढूंढता ही नही है वह उससे प्रेरणा पाकर दिशादर्शी पत्रकार के गुणों से सम्पन्न भी होता है। अंतः गांधी जी इन मायनो में उत्कृष्ट पत्रकारिता की प्रस्तुति विश्व पटल पर रखते है और एक महान सम्पादक तथा सर्वश्रेष्ठ पत्रकार के रूप मे प्रतिष्ठापित होते है।

राष्ट्रीय आन्दोलन और संघर्षकाल की पत्रकारिता के दौर में भी उनकी चिन्ता आधुनिक पत्रकारिता के बुराईयों पर भी जाती है, इसका खुलासा गांधी जी यंग इंडिया के 28 मई 1931 के अंक में करते है कि आधुनिक पत्रकारिता मे जिस तरह सतहीपन, पक्षपात, अयार्थता और यहां तक कि बेईमानी भी घुस आयी है, वह उन ईमानदार लोंगो को बराबर गलत रास्ते पर ले जाती है जो केवल यह चाहते है कि न्याय की विजय हो।

गांधी जी को पहला लोक शिक्षक कहना उचित होगा, क्योंकि पत्रकारिता की प्रवृत्ति भी लोगो को शिक्षित बनाने में है, अतः पत्रकार लोकशिक्षक होते है। गांधी जी ने जनता अखबार संचालकों और सम्पादको को यह दृष्टि भी दी की उनका पत्र किस प्रकार आर्थिक लाभ के लिए स्वयं भी तथा पाठकों को भी गलत भावनाएं दे सकता है और इससे कैसे बचा जा सकता है। समाचार पत्रो की इस समस्या और समाधान की बात अपने पत्र ''यंग इंडिया'' के 25 मार्च 1926 करे पृष्ठ 114 पर लिखी कि ''मेरी धारण है कि अनैतिक विज्ञापनो के बल पर अखबार चलाना गलत है । मेरा विश्वास है कि यदि विज्ञापन लिया ही जाये तो अखबार के मालिको और संपादको को पहले उनकी कडी छानबीन करनी चाहिए और केवल तटस्थ विज्ञापन ही स्वीकार किये जाना चाहिए। आज बडे प्रतिष्ठित अखबार और पत्रिकाएँ भी अनैतिक विज्ञापन की बुराई का शिकर है। इसका सामना अखबारो के मालिको और संपादको के विवेक का परिष्कार करके ही किया जा सकता है। यह परिष्कार मेरे जैसे नौसिखिया संपादक के प्रभाववश नही हो सकता। यह तो तभी होगा तब इस बढती बुराई को पहचान कर उनका अपना विवेक जागृत होगा या जनता की प्रतिनिधि सरकार जनता के नैतिक आदर्शो के प्रति जागरूक होकर उन पर अपना विवेक आरेपित करेंगी।''

गांधी जी का उक्तायांश आज की आधुनिक से परिपूर्ण पत्रकारिता को भी इंगित है। वास्तव में वर्तमान यानि नई सदी की पत्रकारिता में इन विचारों का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन हम देख रहे है। समाचार पत्रों ने अपने व्यावसायिक लाभो के लिए सभी सीमाओं को लांघ दिया है, वे तनिक भी चिन्तित नही है कि पाठकों पर विज्ञापनो की अश्लीलता का क्या प्रभाव पड़ रह है। विज्ञापनों को जांचने–परखने तथा पाठकों पर मूल्यांकन करने का समय आज श्रृंखला पत्रों के मालिको और संपादको के पास नही और नही गांधीवादी सम्पादकों की पूछ–परख अखबारों में है इसलिए पत्रकारिता से इस प्रकार की अपेक्षा करना कठिन हो गया है।

गांधी जी आत्मविश्वास से परिपूर्ण थे, उनकी दृष्टि साफ थी, वे जानते थे, कि किसी भी प्रकार की अशांति या अव्यवस्था फैलाने वाले पत्रों को स्वस्थ लोकमत के आधार पर हतोत्साहित किया जा सकता है उनका यह मन्तव्य ''यंग इंडिया'' 28 मई 1935 (पृष्ठ 121) में स्पष्ट है कि ''मेरे सामने पत्र–पत्रिकाओ के ऐसे उदाहरण है जिनमे वीभत्स बाते दी गयी है, उनमें सांप्रदायिकता भड़काने घोर मिथ्याकथन और राजनितिक हिंसा को भड़काने की हत्या के सामने गंभीर बातें है। सरकार के लिए ऐसी पत्र–पत्रिकाओं पर मुकदमे चलाना या दमनकारी अध्यादेश जारी करना मुश्किल बात नही है, लेकिन इससे कोई मतलब हल नही होता है, यदि कोई प्रभाव होता भी है तो वह बडा ही अस्थायी होता है। किसी भी हालत में, इनसे लेखकों के रवैये में कोई परिवर्तन नही आता जो प्रेस के खुले मंच से वंचित होने पर प्रायः गोपनीय प्रचार में प्रवत्त हो जाते है। इसका असली उपचार स्वस्थ लोकमत है, जिसे विषैली पत्र–पत्रिकाओ को संरक्षण देने से इंकार कर देना चाहिए। प्रेस की स्वतंत्रता एक मूल्यवान विशेषधिकार है, जिसे कोई देश छोड़ नही सकता। लेकिन बहुत हल्की रोक–थाम के अलावा कोई कारगर कानूनी रोक न हो जो नही होनी चाहिए, तो जैसा मैने ऊपर कहा है, आंतरिक रोक का होना जरूरी है। जो न तो असंभव है और न उस पर आपत्ति की जानी चाहिए।''

आज हमें हम बात से इंकार नही करना चाहिए कि देश के लोगतंत्र गहरा धक्का लगा है तो इसमें कुछ

तथाकथित समाचार पत्रों के उन प्रकाशनो का प्रत्यक्ष अप्रत्क्ष हाथ है जो अशांति बनाये रखने के लिए सांप्रदायिक खबरों को मिर्च मसाला लगा कर पेश करते है। अनेक समाचार पत्रो में पत्रकारिता के मूल्यगत प्रश्नो का घोर अनादर भी हो रहा है मिथ्या कथनो से युक्त खबरे पाठकों को दिग्भ्रमित कर रही है। राजनैतिक संवाद अब वैचारिक पृष्ठभूमि या सिद्धांतो पर नही बल्कि दल–बल की हिंसा पर टिके है। ऐसे में 21 वी सदी की पत्रकारिता को एक बार ठहरकर गांधी की पत्रकारिता का पाठ दोहराने के लिए सामने आना होगा।

गांधी जी ने पत्रकारिता को मुफ्त का साहित्य नही माना, इस विषय पर उनके अपने निजी विचार थे, जो उन्होने अपने पत्र हरिजन के 25 फरवरी 1933 के अंक में व्यक्त किये – ''किसी भी विषय पर जनता को मुफ्त साहित्य उपलब्ध कराने में मेरा विश्वास नही है। वह बहुत ही सस्ता हो सकता है, पर मुफ्त कभी भी नही।'' इस पुरानी संस्कृति उक्ति में मेरा विश्वास है कि ज्ञान उनके लिए है जो उसके पात्र है। लेकिन ये मेरे निजी विचार है। मै संगठनो और संगठको को सिर्फ अपनी सलाह ही दे सकता हूँ। 'हरिजन' में कोई कॉपीराइट नही है उद्यमी भाषाई समाचार पत्र 'हरिजन' का अपना संस्करण प्रकाशित करेंगे। कुछ ने ऐसा करने की अपनी इच्छा के बारे में मुझे लिखा भी है। मै किसी को रोक नही सकता। मै सिर्फ हर एक से यह आग्रह ही कर सकता हूँ कि मैने जो सलाह दी है और जो काफी अनुभव पर आधारित है, उसका अनुकरण किया जाये।''

दिनांक 29 अप्रैल 1946 के पृष्ठ 101 के 'हरिजन' पत्र में गांधी जी ने पुनः एक बात कही जो नई सदी के ''पत्रकारिता का सही काम लोक मानस का शिक्षित करना है – उसे वंछित–अवांछित विचारो से भरना नही। इसलिए अखबार में क्या बात देनी है और कब देनी है, इसका निर्णय पत्रकार को अपने विवेक से करना चाहिए। आज स्थिति यह है कि पत्रकार केवल तथ्य दे कर संतोष का अनुभव नही करते। पत्रकारिता घटनाओं की 'प्रबद्ध पूर्वाप्रेक्षा' की कला बन गई है।''

गांधी जी ने तथ्यों के अध्ययन को समाचार पत्रो के लिए श्रेष्ठकर कार्य निरूपित किया। किसी भी प्रकार के स्वतंत्र चिंतन को बधित करने वाली बातों को वे नापसंद ही नही अपितु अपने जीवन में खारिज भी कर देते थे। एक पत्रकार के लिए इसकी क्या उपयोगिता हो सकता है, इसको भी गांधी जी ने स्पष्टता के साथ प्रकट किया। उन्होने 25 मई 1946 (पृष्ठ 54) के पत्र 'हरिजन' में लिखा कि, ''मै अखबारों से राय उधार लेने की आदत को खराब समझाता है। अखबार तथ्यों का अध्ययन करने के लिए है। उन्हे स्वतंत्र चिंतन की हमारी आदत को मारने की इजाजत नही दी जानी चाहिए।'' इस बात की गंभीरता के लिए गांधी जी ने 9 फरवरी 1947 में 'हरिजन' के अंक में पुनः दोहराया कि, ''मै अखबारों का कर्तव्य समझता हूँ कि अपने पाठको को केवल तथ्य दे, और कुछ नही।'' यह सर्वसिद्ध है कि गांधी जी की सच्चाई के प्रति अगाध निष्ठा था। वे किसी भी रूप में सत्य विजय को मनुष्य का पहला और आखिरी संघर्ष मानते थे। गांधी जी का यह परिप्रेक्ष्य पत्रो और पत्रकारों के लिए भी मार्गदर्शक व्यक्तित्व में कूट – कूटकर भरा हुआ था। अखबार का संचालन भी सत्य का अनुगामी होना चाहिए। पत्रकारो को वे राय देते कि परिस्थितियां चाहे कितनी विपरित हो उन्हे सत्यता के मार्ग को नही छोड़ना चाहिए। अतः गांधी जी ने 'हरिजन' के 27 अप्रैल 1947 (पृष्ठ 128) के अंक मे पत्रकारो को संबोधित किया कि ''प्रेस को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जा सकता है। उसके शक्तिशाली होने में कोई संदेह नही है, लेकिन इस शक्ति का दुरूपयोग करना एक अपराध है। मै स्वयं एक पत्रकार हूँ और अपने साथी पत्रकारो से अपील करता है कि वे अपने उत्त्रदायित्व के समय केवल इस विचार को प्रश्रय दे कि सच्चाई को सामने लाना है और उसी का पक्ष लेना।''

गांधी जी अखबारो के प्रभाव से अच्छी तरह वाकिफ थे। अखबार पाठकों पर सीधा असर डालते है। इसलिए अखबारो को सम्हलकर अपना प्रकाशन करना चाहिए। गलत समाचारों से पाठकों में गलत भावनाओं का उफान आता है। सूचनाएं, निश्चय हो वांछनिय भावनाए पैदा करने वाली होनी चाहिए। संपादको, पत्रकारों को इस विषय में गंभीरता से सोचना चाहिए। प्रबुद्ध वर्गो को भी इस तरफ अपनी सजगता रखनी चाहिए। गांधी जी ने 'हरिजन' के 18 अक्टूबर 1947 पृष्ठ 378 में पत्रकारों को कर्तव्य बोध कराया कि ''अखबारों का बडा जबरदस्त असर होता है।''

संपादको का यह कर्तव्य है, ''कि वे यह सुनिश्चित करे कि उनके अखबारों में कोई झूठी रिपोर्ट प्रकाशित न हो जिससे जनता के भड़कने की आशंका हो। संपादको और उनके सहायको को खबरों और उनके देने के ढंग के बारे में विशेष रूप से सावधान रहना चाहिए। स्वाधीनता की स्थिति में सरकार के लिए प्रेस पर नियंत्रण रखना लगभग असंभव है। यह काम जनता का है कि वह अखबारों पर कडी नजर रखे और उन्हे सही रास्ते पर चलाये। प्रबुद्ध जनता को भडकाने वाले या अश्लील अखबारो को संरक्षण देने से इंकार कर देगी।'' गांधी जी इससे पहले 'हरिजन' के 21 जनवरी 1947 (पृष्ठ 391) में संपादको का उत्तरदायित्व स्मरण करा चुके थे। जैसा कि उन्होने लिखा कि, ''लोग किसी भी छपी हुई चीज को देवी सत्य मान लेते है, इस कारण संपादको और समाचार लेखको का उत्तरदायित्व बहुत अधिक बढ़ जाता है।'' दूसरी तरफ गांधी जी ने पाठको को ऐसा अखबारो से सदा अतिरंजित खबरों को परोसने का काम बड़ी चालाकी से करते है। सचेत भी करते है वह भी एक पाठकीय अंदाज में जिससे पाठक इन पत्रों के खराब प्रभाव से बच सके। अतः गांधी जी ने अपनी स्पष्टबयानी और बड़ी निष्पक्षता से 'हरिजन' के 30 अक्टूबर 1947 (पृष्ठ 447) में कहा कि, ''मै स्वयं कभी अखबारों की रिपोर्टिग पर बहुत अधिक भरोसा नही करता और अखबारो के पाठकों को भी चेतावनी देना चाहता हूँ कि वे उनमें होने वाली हानियों से आसानी से प्रभावित न हो। अच्छे से अच्छे अखबार भी अतिरंजन और भाषा के अलंकरण से मुक्त नही होते।''

पत्रकारिता के माध्यम से कोई भी ऐसा संघर्ष जो आंतरिक शक्ति के लिए चलाया जा रहा है उसकी सफलता पर किंचित मात्र भी संदेह नही किया जा सकता है। इस तथ्य को गांधी जी ने अत्यंत गर्व के साथ लिया तथा 'इंडियन ओपनियन' के द्वारा यह प्रबल पक्ष भी उपस्थित किया कि ''मेरा विश्वास है कि ऐसा संघर्ष जो मुख्य रूप से आंतरिक शक्ति पर भरोसा करता है, अखबार के बिना पूरी तरह नही चलाया जा सकता। यह मेरा अनुभव भी है कि हमें 'इंडियन ओपिनियन' के बगैर उतनी सुगमता और सरलता के साथ स्थानीय समुदाय को शिक्षित नही कर सकते थे और न ही दुनिया भर में फैले भारतीयो को दक्षिण अफ्रीका के घटना से परिचित कर सकते थे जैसे हमने किया इसलिए 'इंडियन ओपिनियन' निश्चित रूप से हमारे संघर्ष का एक बहुत ही उपयोग और कारगर हथियार था।''

समाचार पत्र अर्थोपार्जन के लिए नही है। इनका उपयोग जनता के हित में होना चाहिए। जनहित के लिए किया गया कार्य एक तरह से राष्ट्रसेवा है। अतः राष्ट्रसेवा के धर्म में समाचार पत्र का प्रयोग अत्यंत पावन कार्य बन पड़ता है। गाँधी जी इस बात को अनेक संदर्भो में कहते रहे है। अपनी आत्मकथा में गाँधी जी रास्ता दिखाया कि मेरी विनम्र राय में समाचार पत्र को जीविका का जरिया बनाना गलत है। काम के कुछ ऐसे क्षेत्र है, जिनके नतीजे ऐसे है तथा जन कल्याण पर जिनका इतना असर पड़ता है। कि उन्हे आजीविका के लिए अपनाना उनके पीछे काम कर रहे मूलभूत उद्देश्य को ही पराजित कर देते है। इसके अलावा जब समाचार पत्र को मुनाफा कमाने का जरिया बनाया जाता है, तो नतीजा दुराचरण ही हो सकता है। जिनके पास पत्रकारिता का कुछ अनुभव है उन्हे यह सिद्ध करना जरूरी नही है कि ऐसे दुराचरण बडे पैमाने पर फैले हुए है।[2]

गांधी जी ने सत्य का अन्वेषण भी किया। एक दैनिक और सप्ताहिक पत्र में सत्य की परिभाषा में क्या दृष्टि होगी, इस विचार पर भी गांधी जी ने प्रकाश डाला, जो इस तरह है : ''तुम्हे 'इंडियन ओपिनियन' में वही लिखना चाहिए जो सत्य हो। पत्रकारिता में सत्य क्या है ? यह तथ्यात्मकता से अलग कैसे है ? क्या ये दोनों एक ही चीज है ? सत्य सिर्फ ज्ञान का विषय नही है – यह इसके अलावा कुछ और है पूर्णतः तटस्थ तरीके से निर्णय का संतुलन इसे एक साप्ताहिक में तो हासिल किया जा सकता है, लेकिन दैनिक समाचार पत्र में सत्यनिष्ठ होना बहुत ही कठिन है जब हम उस स्थिति पर विचार करते है जिसमें वह तैयार किया जाता है एजेंसियों की संख्या जिनसे हो कर गुजरता है तथा जिस गति से वह दुनिया के सभी हिस्से में संग्रहित किया जाता है अनुवादित होता है प्रेषित होता है चुना जाता है संपादित होता है तथा छापा जाता है।''[3]

उपरोक्त विचार आधुनिक पत्रकारिता के लिए अत्यंत प्रेरणास्पद है। बीसंवी सदी का यह महापुरूष केवल राजनैतिक संघर्ष का नायक ही नही, अपितु विश्ववंद्य पत्रकारिता का महानायक भी है। भारत की स्वतंत्रता की

उपलब्धि में बापू ने सदैव पत्रों का सहारा लिया। 'इंडियन ओपिनियन', 'यंग इंडिया', 'हरिजन' जैसे पत्रों के आदर्श संपादक महात्मा गांधी ने अपनी पत्रकारिता को निम्नलिखित शब्दों में सुस्पष्ट किया – ''मैने पत्रकारिता के लिए नही, बल्कि जिंदगी में अपने मिशन को जिस रूप में समझा है, उसके सहायक के रूप में अपनाया है।'' मेरा मिशन सत्याग्रह हथियार के रूप में अहिंसा और सत्य का सीधा – सीधा उपप्रमेय (कर्लरि) है, अद्वितीय हथियार के रूप मं अति संयम के साथ इस्तेमाल करने के तरिको को उदाहरण के जरिये समझना है।

इसलिए अपनी आस्था के प्रति निष्ठावान होते हुए मै आक्रोश या दुर्घटना से नही लिख सकता है। मै महज आवेश पैदा करने के लिए नही लिख सकता हूँ। पाठकों को इस बात की जानकारी नही हो सकती है कि विषयों और शब्दावली के चयन के लिए मुझे सप्ताह दर सप्ताह कितना संयम बरतना पड़ता है। यह मेरे लिए एक प्रशिक्षण है। इससे मुझे अपने अंदर झांकने और अपनी कमजोरियों का तलाशने में मदद मिलती है अक्सर मेरा दंभ तीखी अभिव्यक्ति या मेरा आक्रोश कठोर विशेषणो को इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित करता है। यह एक खौफनाक अग्नि परीक्षा है, लेकिन इन खरपतवारो को निकालना एक खुबसुरत अभ्यास भी है। पाठक यंग इंडिया के पृष्ठों को सजे – सवरें रूप में देखते है और कभी–कभी रोमा रोला सहित कहना चाहते है, ''कितना खूबसूरत यह बूढा आदमी होगा। बरहाल दुनिया को यह जानना चाहिए कि सूक्ष्मता का परिष्कार सावधानी और निष्ठा से किया जाता है। मैने अपने और पाठकों के आगे कोई असंभव आदर्श या अग्नि परीक्षा नहीं पेश की है।''[4]

निष्कर्ष

पत्र – पत्रिकाएँ सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक चेतना की दैनन्दिनी होती है। गांधी जी ने अपने पत्रों के माध्यम से मानव मन में स्वाभिमान, आत्मरक्षा को भाव भरा, जन जागरण का संदेश प्रसारित किया तथा स्वतंत्रता के साथ–साथ सुधार, परिष्कार, विकास का मार्ग प्रशस्त किया। समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे की नींव पर गाँधी जी के पत्रों ने विश्व इतिहास रचा है। साहित्यिक, सांस्कृतिक अभिरूचि के विकास के साथ ही आर्थिक उन्नति के लिए गांधी जी के पत्रों और उनसे प्रेरित पत्रकारिता ने जिस समर्पित भावना से चतुर्दिक सुधार और भारत को स्वतंत्रता दिलाने के जिन कार्यो–आंदोलनो का सम्पादित किया, वह अविस्मीय है। इस दिशा में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अवदानों की चर्चा उल्लेख है।

संदर्भ सूची

1. देसाई, वालजी गोविंद जी (1928) अनुवादित, *सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका,* प्रकाशन ट्रिपलीकेशन मद्रास, पृ. 142।
2. गाँधी, एम. के., (अनुवाद –काशीनाथ त्रिवेदी), *सत्य प्रयोग आत्मकथा,* नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ. 456।
3. पुत्र मणिलाल को पत्र, दी प्रेस पब्लिक वाटस मार्टिन, पृ. 114।
4. गाँधी, एम. के., (अनुवाद –काशीनाथ त्रिवेदी), *सत्य प्रयोग आत्मकथा,* नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ. 211।

****